दो आस्थाएँ

अमृतलाल नागर

दो आस्थाएँ

अरी कहाँ हो? इंदर की बहुरिया! - कहते हुए आँगन पार कर पंडित देवधर की घरवाली सँकरे, अँधेरे, टूटे हुए जीने की ओर बढ़ीं।

इंदर की बहू ऊपर कमरे में बैठी बच्चे का झबला सी रही थी। मशीन रोककर बोली - आओ, बुआजी, मैं यहाँ हूँ। - कहते हुए वह उठकर कमरे के दरवाजे तक आई।

घुटने पर हाथ टेककर सीढ़ियाँ चढ़ते हुए पंडिताइन इस कदर हाँफ रही थीं कि कि ऊपर आते ही जीने के बाहर की दीवाल से पीठ टेककर बैठ गई।

इंदर की बहू आगे बढ़कर पल्ले को दोनों हाथों की चुटकियों से पकड़ सात बार अपनी फुफिया सास के पैरों पड़ी।

- ठंडी सीरी बूढ़ सुहागन, दूधन नहाओ पूतन फलो - आशीर्वाद देती हुई पंडिताइन रुकीं, दम लेकर अपने आशीर्वाद को नया बल देते हुए कहा-हम तो, बहुरिया, रात-दिन यही मनाएँ हैं। पहलौठी का होता तो आज दिन ब्याव की फिकर पड़ती। (दबी आह) राम करै मारकंडे की आर्बल लैके आवै जल्दी से। राम करैं, सातों सुख भोगो, बेटा।

इंदर की बहू का मुख-मंडल करुणा और श्रद्धा से भर उठा, पलकें नीची हो गईं। फुफिया सास की बाँह पकड़कर उठाते हुए कहा - कमरे में चलो बुआजी।

- चलो, रानी। तनिक सैंताय लिया, तो साँस में साँस आई। अब हमसे चढ़ा उतरा नाहीं जाए है बेटा, क्या करैं?

बुआजी उठकर बहुरिया के साथ अंदर आईं। मशीन पर नन्हा-सा झबला देखकर बुआजी ने अपनी भतीज-बहू को खुफिया पुलिस की दृष्टि से देखा, फिर पूछा - ई झबला...

दूधवाली के बच्चे के लिए सी रही हूँ। चार बिटियों के बाद अब के लड़का हुआ है उसे। बड़ा शुभ समै है बिचारी के लिए।

- बड़ी दया-ममता है बहू तुमरे मन में। ठाकुरजी महाराज तुमरी सारी मनोकामना पूरी करैं। तुम्हें औ इंदर को देख के ऐसा चित्त परसन्न होय है ऐसा कलेजा जुड़े हैं, बेटा कि... जुग जुग जियौ! एक हमरे भोला-तरभुअन की बहुएँ हैंगी। (आह फिर विचारमग्नता) हुँह! जैसा मानुख, वैसी जोए। बहू बानी तो कच्चा कच्चा बेत हामें हैंगी। पराए घर की बेटियों को क्या दोख दूँ।

- कोई नई बात हुई, बुआजी?

- अरे, जिस घर के सिंस्कार ही बदल जाएँ, उस घर में नित्त नई बात होवेगी। हम तो कहमें हैं, रानी, कि हमरे पाप उदै भए हैं।

कहकर बुआजी की आँखें फिर शून्य में सध गईं। इंदर की बहू को 'नई बात' का सूत्र नहीं मिल पा रहा था, इसलिए उसके मन में उथल-पुथल मच रही थी। कुछ नई बात जरूर हुई है, वो भी कहते थे कि फूफाजी कुछ उखड़े-से खोए हुए-से हैं।

- बड़े देवर की कुतिया क्या फिर चौके में... इंदर की बहू का अनुमान सत्य के निकट पहुँचा। घटना पंडित देवधर के ज्येष्ठ डॉक्टर भोलाशंकर भट्ट द्वारा पाली गई असला स्काटलैंड के श्वान की बेटी जूलियट के कारण ही घटी। इस बार तो उसने गजब ही ढा दिया। पंडितजी की बगिया में पुरखों का बनवाया हुआ एक गुप्त साधना-गृह भी है। घर की चहारदीवारी के अंदर ही यह बगिया भी है, उसमें एक ओर ऊँचे चबूतरे पर एक छोटा-सा मंदिर बना है। मंदिर में एक संन्यासी का पुराना कलमी चित्र चंदन की नक्काशीदार जर्जर चौकी पर रखा है। उस छोटे से मंदिर में उँकड़ू बैठकर ही प्रवेश किया जा सकता है। मंदिर के अंदर जाकर दाहिने हाथ की ओर एक बड़े आलेनुमा द्वार से अपने सारे शरीर को सिकोड़कर ही कोई मनुष्य साधना गृह में प्रवेश कर सकता है। इस गृह में संगमरमर की बनी सरस्वती देवी की अनुपम मूर्ति प्रतिष्ठित है, जिस पर सदा तेल से भिगोया रेशमी वस्त्र पड़ा रहता है। केवल श्रीमुख के ही दर्शन होते हैं। मूर्ति के सम्मुख अखंड दीप जलता है। यह साधना-गृह एक मनुष्य के पालथी मारकर बैठने लायक चौड़ा तथा मूर्ति को साष्टांग प्रणाम करने लायक लंबा है। पंडित देवधरजी के पितामह के पिता को संन्यासी ने यह मूर्ति और महा सरस्वती का बीज मंत्र दिया था। सुनते हैं, उन्होंने संन्यासी की कृपा से यहीं बैठकर वाग्देवी को सिद्ध किया और लोक में बड़ा यश और धन कमाया था। पंडितजी के पितामह और पिता भी बड़े नामी-गिरामी हुए, रजवाड़ों में पुजते थे। पंडित देवधरजी को यद्यपि पुरखों का सिद्ध किया हुआ बीजमंत्र नहीं मिला, फिर भी उन्होंने अपने यजमानों से यथेष्ट पूजा और दक्षिणा प्राप्त की। बीज मंत्र इसलिए न पा सके कि वह उत्तराधिकार के नियम से पिता के अंतकाल में उनके बड़े भाई धरणीधरजी को ही प्राप्त हुआ था और वे भरी जवानी में ही हृदय-गति रुक जाने से स्वर्ग सिधार गए थे। फिर भी पंडित देवधरजी ने आजीवन बड़ी निष्ठा के साथ जगदंबा की सेवा की है।

एक दिन नित्य-नियमानुसार गंगा से लौटकर सबेरे पंडितजी ने जब साधना-गृह में प्रवेश किया तो उसे भोला की कुतिया के सौरी-घर के रूप में पाया। पंडितजी की क्रोधाग्नि प्रचंड रूप से भड़क उठी। लड़के-लड़कों की बहुएँ एकमत होकर पंडित देवधर से जबानी मोर्चा लेने लगे। पंडित देवधरजी ने उस दिन से घर में प्रवेश और अन्न-जल ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा ले रखी है। वे साधना-गृह के पास कुएँवाले दालान में पड़े

रहते हैं। आज चार दिन से उन्होंने कुछ नहीं खाया। कहीं और बाजार में तो वे खाने-पीने से रहे, शायद इंदर के घर भोजन करते हों। यही पूछने के लिए इंदर की बुआ इस समय यहाँ आईं थीं, परंतु उनकी भतीज-बहू ने जब उनके यहाँ भोजन न करने की बात बताई तो सुनकर बुआजी कुछ देर के लिए पत्थर हो गईं। पति की अड़सठ वर्ष की आयु, नित्य सबेरे तीन बजे उठ दो मील पैदल चलकर गंगाजी जाना आना, अपना सारा कार्यक्रम निभाना, दोपहर के बारह-एक बजे तक ब्रह्म-यज्ञ, भागवत पाठ, सरस्वती कवच का जप आदि यथावत् चल रहा है; और उनके मुँह में अन्न का एक दाना भी नहीं पहुँचा। यह विचार बुआजी को जड़ बना रहा था।

- ये तो सब बातें मुझे इत्ती बखत तुमसे मालूम पड़ रही हैं बुआजी। फूफाजी ने तो मेरी जान में कभी कुछ भी नहीं कहा। कहते तो मेरे सामने जिकर आए बिना न रहता।

- अरे तेरे फूफाजी रिसी-मुनी हैंगे बेटा! बस इन्हें क्रोध न होता, तो इनके ऐसा महात्मा नहीं था पिरथी पे। क्या करूँ, अपना जो धरम था निभा दिया। जैसा समय हो वैसा नेम साधना चाहिए। पेट के अंश से भला कोई कैसे जीत सके है।

- फूफाजी आखिर कितने दिन बिना खाए चल सकेंगे। बुढ़ापे का शरीर है...

- बोई तो मैं भी कहूँ हूँ, बेटा। मगर इनकी जिद के अगाड़ी मेरी कहाँ चल पावे है? बहोत होवे है, तो कोने में बैठके रोलू हूँ।

- कहते-कहते बुआजी का गला भर आया, बोलीं - इनके सामने सबको रखके चली जाऊँ तो मेरी गत सुधार जाए। जाने क्या-क्या देखना बदा है लिलार में! - बुआजी टूट गई, फूट-फूटकर रोने लगीं।

- तुम फिकर न करो, बुआजी। इतने दिनों तक तो मालूम नहीं था, पर आज से फूफाजी के खाने-पीने का सब इंतजाम हो जाएगा।

डॉक्टर इंद्रवत शर्मा के युनिवर्सिटी से लौट कर आने पर चाय पीते समय उनकी पत्नी ने सारा हाल कह सुनाया। इंद्रदत्त सन्न रह गए। प्रेयसी के समान मनोहर लगनेवाली चाय के हठ को पहचानते थे। फूफाजी बिना किसी से कुछ कहे-सुने इसी प्रकार अनशन कर प्राण त्याग कर सकते हैं, फूफाजी बिना किसी से कुछ कहे-सुने इसी प्रकार अनशन प्राण त्याग कर सकते हैं, इसे इंद्रदत्त अच्छी तरह जानते थे। उनके अंतर का कष्ट चेहरे पर तड़पने लगा। पति की व्यथा को गौर से देखकर पत्नी ने कहा - तुम आज उन्हें खाने के लिए रोक ही लेना। मैं बड़ी शुद्धताई से बनाऊँगी।

- प्रश्न यह है वे मानेंगे भी? उनका तो चंद्र टरै सूरज टरैवाला हिसाब है।

- तुम कहना तो सही।

- कहूँगा तो सही, पर मैं जानता हूँ। लेकिन इस तरह वे चलेंगे कितने दिन? भोला को ऐसा हठ न चाहिए।

- भोला क्या करें। कुतिया के पीछे-पीछे घूमते फिरें? शौक है अपना और क्या? फूफाजी को भी इतना विरोध न चाहिए।

- फूफाजी का न्याय हम नहीं कर सकते।

- अभी मान लो तुम्हारे साथ ही ऐसी गुजरती?

- मैं निभा लेता।

- कहना आसान है, करना बड़ा मुश्किल है। फूफाजी तो चाहते हैं सबके सब पुराने जमाने के बने रहें। चोटी जनेऊ, छूतछात, सिनेमा न जाओ और घूँघट काढ़ो, भला ये कोई भी मानेगा?

- मेरे खयाल में फूफाजी इस पर कुछ...

- भले न कहें, अच्छा तो नहीं लगता।

- ठीक है। तुम्हें भी मेरी बहुत-सी बातें अच्छी नहीं लगतीं।

- कौन-सी बातें?

- मैं शिकायत नहीं करता। उदाहरण दे रहा हूँ, ठीक-ठीक एक मत के कोई दो आदमी नहीं होते। होते भी हैं, तो बहुत कम, पर इससे क्या लोगों में निभाव नहीं होता? भोला और उसकी देखदेखी त्रिभुवन में घमंड आ गया; माँ-बाप को ऐसे देखते हैं, जैसे उनसे पैदा ही नहीं हुए। फूफाजी हठी और रूढ़िपंथी हैं सही, पर एकदम अवज्ञा के योग्य नहीं। ये लोग उन्हें चिढ़ाने के लिए घर में प्याज, लहसुन, अंडा, मछली सब कुछ खाते हैं। फूफाजी ने अपना चौकाघर ही तो अलग किया। किसी से कुछ कहा-सुना तो नहीं?

स्वभाव से शांत और बोलने में मितव्ययी इंद्रदत्त इस समय आवेश में आ गए थे। फूफाजी के प्रति उसका सदा से आदरभाव था। लोक उनका आदर करता है। इधर महीनों से इंद्रदत्त के आग्रह पर पंडित देवधरजी प्रतिदिन शाम के समय दो-ढाई घंटे

उनके घर बिताते हैं। कभी भागवत, कभी रामायण, कभी कोई पौराणिक उपाख्यान चल पड़ता है। पंडितजी अपनी तरह से कहते हैं, इंद्रदत्त उनके द्वारा प्राचीन समाज के क्रम-विकास के चित्र देखता, उनसे अपने लिए नया रस पाता। कभी-कभी बातों के रस में आकर अपने राजा-ताल्लुकेदार यजमानों के मजेदार संस्मरण सुनाते हैं,कभी उनके बचपन और जवानी की स्मृतियों तक से टकराती हुई पुरानी सामाजिक तस्वीरें, इन मुहल्लों की पुरानी झाँकियाँ सामने आ जाती हैं। फूफाजी के अनुभवों से अपने लिए ज्ञान-सूत्र बटोरते हुए उनके निकट संपर्क में आकर इंद्रदत्त को आदर के अलावा उनसे प्रेम भी हो गया है।

इंद्रदत्त की पत्नी के मन में आदर भाव तो है, पर जब से वे बराबर आकर बैठने लगे हैं, तब से उसे एक दबी ठंडी शिकायत भी है। पति के साथ घड़ी दो घड़ी बैठकर बातें करने, कैरम या चौसर खेलने या अपने पैतृक घर के संबंध में जो अब नए सिरे से बन रहा है, सलाह-सूत करने का समय उसे नहीं मिल पाता। अपनी छोटी देवरानी त्रिभुवन की बहू से बड़ा से बड़ा नेह-हेत होने के कारण उसकी बातों में विश्वास रखकर वह फूफाजी के पुरानेपन से किसी हद तक फिरंट भी है। इसलिए जब इंद्रदत्त ने यह कहा कि घर में मांस-मछली के प्रयोग के बाद फूफाजी ने अपना चौका अलग कर लिया, मगर कुछ बोले नहीं, तो उनकी पत्नी से रहा नहीं गया। कहने लगी - तो उन लोगों से - अरे पोते-पोतियों तक से तो बोलते नहीं, फिर शिकायत किससे करेंगे।

- फूफाजी को पहचानने में बस यहीं तुम लोग गलती करते हो। उनका प्रेम प्रायः गूँगा है। मैंने अनुभव से इस बात को समझा है। बंद रहने पर भी झिरझिरे दरवाजों से जिस तरह लू के तीर आते हैं, संयमी इंद्रदत्त के अंतर में उद्वेग इसी तरह प्रकट हो रहा था।

पत्नी ने पति के रुख पर रुख किया; तुरंत शांत और मृदु स्वर में कहा - मैं फूफाजी को पहचानती हूँ। उनके ऐसे विद्वान की कदर उस घर में नहीं। उनका प्रेम तुम जैसों से हो सकता है। तुम चिंता न करो। बरत आज पूरा हो जाएगा।

- मान जाएँगे? पत्नी के चेहरे तक उठी इंद्रदत्त की आँखों में शंका थी, उनका स्वर करुण था।

- प्रेम नेम बड़ा है। - पति के क्षोभ और चिंता को चतुराई के साथ पत्नी ने मीठे आश्वासन से हर लिया; परंतु वह उन्हें फिर चाय-नाश्ता न करा सकी।

डॉक्टर इंद्रदत्त शर्मा फिर घर में बैठ न सके। आज उनका धैर्य डिग गया था। फूफाजी लगभग छै साढ़े बजे आते हैं। इंद्रदत्त का मन कह रहा था कि वे आज भी आएँगे, पर

शंका भी थी। मुमकिन हैं अधिक कमजोर हो गए हों, न आएँ। इंद्रदत्त ने स्वयं जाकर उन्हें बुला ले आना ही उचित समझा। हालाँकि उन्हें यह मालूम है कि इस समय फूफाजी स्नान-संध्या आदि में व्यस्त रहते हैं। पं. देवधर जी का घर अधिक दूर न था। डॉक्टर इंद्रदत्त सदर दरवाजे से घर में प्रवेश करने के बजाय एक गली और पार कर बगिया के द्वार पर आए। फूफाजी गंगा लहरी का पाठ कर रहे थे। फूलों की सुगंधि-सा उनका मधुर स्वर बगिया की चहारदीवारी के बाहर महक रहा था :

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिप परित्यज्य सहसा,

विलोल द्वानीरं तव जननि तीरे श्रित वताम् ।

सुध्धातः स्वादीथः सलिलभिदाय तृप्ति पिबताम्ज

नानामानंदः परिहसति निर्वाण पदवीम् ।।

इंद्रदत्त दरवाजे पर खड़े-खड़े सुनते रहे। आँखों मे आँसू आ गए। फूफाजी का स्वर उनके कानों में मानो अंतिम बार की प्रसादी के रूप में पड़ रहा था। कुछ दिनों बाद, कुछ ही दिनों बाद यह स्वर फिर सुनने को न मिलेगा। कितनी तन्मयता है, आवाज में कितनी जान है। कौन कहेगा कि पंडित देवधर का मन क्षुब्ध है, उन्होंने चार दिनों से खाना भी नहीं खाया है? ...ऐसे व्यक्ति को, ऐसे पिता को भोला-त्रिभुवन कष्ट देते हैं। इंद्रदत्त इस समय अत्यंत भावुक हो उठे थे। उन्होंने फूफाजी की तन्मयता भंग न करने का निश्चय किया। गंगा लहरी पाठ कर रहे हैं, इसलिए नहाकर उठे हैं या नहाने जा रहे हैं, इसके बाद संध्या करें। फूफाजी से भेंट हो जाएगी। उनके कार्यक्रम में विघ्न न डालकर इतना समय बुआ के पास बैठ लूँगा, यह सोचकर वे फिर पीछे की गली की और मुड़े।

- अम्मा !

- हाँ, बड़ी। ...अपने कमरे में, दरवाजे के पास घुटनों पर ठोढ़ी टिकाए दोनों हाथ बाँधे गहरे सोच में बैठी थीं। जेठे बेटे की बहू का स्वर सुनकर तड़पड़ ताजा हो गई। हाँ इतनी देर के खोएपन ने उसके दीन स्वर में बड़ी करुणा भर दी थी।

बड़ी बहू के चेहरे की ठसक को उनकी कमर के चारों और फूली हुई चर्बी सोह रही थी, आवाज भी उसी तरह मिजाज के काँटे पर सधी हुई थी, वे बोली - उन्होंने पुछवाया है कि दादा आख़िर चाहते क्या हैं?

- वो तो कुछ भी नहीं चाहे हैं बहू।

- तो ये अनशन फिर किस बात का हो रहा है?

पंडित देवधर की सहधर्मिणी ने स्वर को और संयत कर उत्तर दिया - उनका सुभाव तो तुम जानो ही हो, बहुरिया।

ये तो कोई जवाब नहीं हुआ, अम्मा। जान देंगे? ऐसा हठ भी भला किस काम का? बड़े विद्वान हैं, भक्त हैं... दुनिया भर को पुन्न और परोपकार सिखाते हैं... कुत्ते में क्या उसी भगवान की दी हुई जान नहीं हैं?

बड़ी बहू तेज पड़ती गई, सास चुपचाप सुनती रहीं।

- ये तो माँ-बाप का धरम नाहीं हुआ, ये दुश्मनी हुई, और क्या? घर में सब से बोलना-चालना तो बंद कर ही रखा था।

- बोलना चालना तो उनका सदा का ऐसा ही है, बेटा। तुम लोग भी इतने बरसों से देखो हो, भोला-तिरभुअन तो सदा से जाने हैं।

- इंदर भाई साहब के यहाँ तो घुल-घुल के बातें करते हैं।

- इंदर पढ़ा-लिखा है न, वैसी ही बातों में इनका मन लगे हैा इसमें...।

- हाँ-हाँ हम तो सब गँवार हैं, भ्रष्ट हैं। हम पापियों की तो छाया देखने से भी उनका धर्म नष्ट होता है।

- बहू, बेटा, गुस्सा होने से कोई फायदा नहीं। हम लोग तो चिंता में खड़े भए हैंगे रानी। तुम सबको रखके उनके सामने चली जाऊँ, विश्वनाथ बाबा से उठते-बैठते आँचल पसार के बरदान माँगूँ हूँ, बेटा... अब मेरे कलेजे में दम नहीं रहा क्या करूँ? ...बुआजी रो पड़ीं।

इंद्रदत्त जरा देर से दालान में ठिठके खड़े थे, बुआ हो रोते देख उनकी भावुकता थम न सकी, पुकारा ...बुआ।

बुआजी एक क्षण के लिए ठिठकीं; चट से आँसू पोंछ, आवाज सम्हालकर मिठास के साथ बोलीं - आओ, भैया।

भोला की बहू ने सिर का पल्ला जरा सम्हाल लिया और शराफती मुस्कान के साथ अपने जेठ को हाथ जोड़े।

इंद्रदत्त ने कमरे में आकर बुआजी के पैर छुए और पास की बैठने लगे। बुआजी हड़बड़ाकर बोलीं - अरे चारपाई पर बैठो।

- नहीं। मैं सुख से बैठा हूँ आप के पास।

- तो ठहरो। मैं चटाई...।

बुआजी उठीं, इंद्रदत्त ने उनका हाथ पकड़कर बैठा लिया और फिर भोला की बहू को देखकर बोला - कैसी हो सुशीला? मनोरमा कैसी है?

- सब ठीक हैं?

- बच्चे?

- अच्छे हैं। भाभीजी और आप तो कभी झाँकते ही नहीं। इतने पास रहते हैं और फिर भी।

- मैं सबकी राजी-खुशी बराबर पूछ लेता हूँ। रहा आना-जाना सो...।

- आपको तो खैर टाइम नहीं मिला, लेकिन भाभीजी भी नहीं आतीं, बाल नहीं, बच्चे नहीं, कोई काम...

- घर में मदद लगी है। ऐसे में घर छोड़ के कैसे आई बिचारी? - बुआजी ने अपनी बहू की बात काटी।

- बहू आँख चढ़ाकर याद आन का भाव जनाते हुए बोली - हाँ ठीक है। कौन-सा हिस्सा बनवा रहे हैं, भाई साहब?

- पूरा घर नए सिरे से बन रहा हैगा। ऐसा बढ़िया कि मुहल्ले में ऐसा घर नहीं है किसी का। - सास ने बहू के वैभव को लज्जित करने की दबी तड़प के साथ कहा। बुआजी यों कहना नहीं चाहती थीं, पर जी की चोट अनायास फूट पड़ी। बड़ी बहू ने आँखें चमका, अपनी दुहरी ठोड़ी को गर्दन से चिपकाकर अपने ऊपर पड़नेवाले प्रभाव को जतलाया और पूछा - पर रहते तो शायद...!

- पीछेवाले हिस्से में रहते हैं।

- इसी हिस्से में जीजी का, मेरा और भैया का जनम भया। एक भाई और भया था। सब यहीं भए? हमारे बाप, ताऊ, दादा और जाने कौने-कौन का जनम...!

- वो हिस्सा घर भर में सबसे ज्यादा खराब है। कैसे रहते हैं?

- जहाँ पुरखों का जनम हुआ, वह जगह स्वर्ग से भी बढ़कर है। पुरखे पृथ्वी के देवता हैं। बड़ी बहू ने आगे कुछ न कहा, सिर का पल्ला फिर सम्हालने लगी।

- आज तो बहुत दिनों में आए, भैया। मैं भी इतनी बार गई। बहू से तो भेंट हो जावे है।

बुआ-भतीजे को बातें करते छोड़कर बड़ी बहू चली गई। उसके जाने के बाद दो क्षण मौन रहा। उसके बाद दोनों ही प्रायः साथ-साथ बोलने को उद्यत हुए। इंद्रदत्त को कुछ कहते देखकर बुआजी चुप हो गईं।

- सुना, फूफाजी ने...!

- उनकी चिंता न करो, बेटा। वो किसी के मान हैं?

- पर इस तरह कितने दिन चलेगा?

- चलेगा जितने दिन चलना होगा। बुआजी का स्वर आँसुओं में डूबने-उतराने लगा - जो मेरे भाग में लिखा होगा - आगे कुछ न कह सकीं, आँसू पोंछने लगीं।

- सच-सच बताना, बुआजी, तुमने भी कुछ खाया...!

- खाती हूँ। रोज ही खाती हूँ - पल्ले से आँखें ढके हुए बोलीं। इंद्रदत्त को लगा कि वे झूठ बोल रही हैं।

- तुम इसी वक्त मेरे घर चलो, बुआजी। फूफा भी वैसे तो आएँगे ही, पर आज मैं... उन्हें लेकर ही जाऊँगा। नहीं तो आज से मेरा भी अनशन आरंभ होगा।

- करो जो जिसकी समझ में आए। मेरा किसी पर जोर नहीं, बस नहीं। - आँखों में फिर बाढ़ आ गई, पल्ला आँखों पर ही रहा।

- नहीं बुआजी ! या तो आज से फूफा का व्रत टूटेगा...!

- कहिए, भाई साहब? - कहते हुए भोला ने प्रवेश किया। माँ को रोते देख उसके मन में कसाव आया। माँ ने अपने दुख का नाम-निशान मिटा देने का असफल प्रयत्न किया, परंतु उनके चेहरे पर पड़ी हुई आंतरिक पीड़ा की छाया और आँसुओं से ताजा नहाई हुई आँखें उनके पुत्र से छिपी न रह सकीं। भोला की मुख-मुद्रा कठोर हो गई। माँ की ओर से

मुँह फेरकर चारपाई पर अपना भारी भरकम शरीर प्रतिष्ठित करते हुए उन्होंने अपने ममेरे भाई से पूछा - घर बन गया आपका?

- तैयारी पर ही है। बरसात से पहले ही कंपलीट हो जाएगा।

- सुना है, नक्शा बहुत अच्छा बनवाया है आपने। इंद्रदत्त ने कोई उत्तर न दिया।

- मैं भी एक कोठी बनवाने का इरादा कर रहा हूँ। इस घर में अब गुजर नहीं होती।

इंद्रदत्त खामोश रहे, भोला भी पल भर चुप रहे, फिर बोले - दादा का नया तमाशा देखा आपने? आज कल तो वे आपके यहाँ ही उठते बैठते हैं। हम लोगों की खूब-खूब शिकायतें करते होंगे।

तुमको मुझसे ज्यादा जानना चाहिए, पर-निंदा और शिकायत करने की आदत फूफा जी में कभी नहीं रही - इंद्रदत्त का स्वर संयत रहने पर भी किंचित उत्तेजित था।

- न सही। मैं आपसे पूछता हूँ, इनसाफ कीजिए आप। यह कौन सा ज्ञान है, कि एक जीवन से इतनी नफरत की जाए। और... और खास अपने लड़कों और बहुओं से... पोते पोतियों से नफरत की जाए... यह किस शास्त्र में लिखा है जनाब, बोलिए! - भोला की उत्तेजना ऐसे खुली, जैसे मोरी से डाट हटाते ही हौदी का पानी गलत बहता है।

इंद्रदत्त ने शांत, दृढ़ स्वर में बात का उत्तर दिया - तुम बात को गलत रंग दे रहे हो, भोला। इस प्रकार यह विकट, कहना चाहिए की घरेलू समस्याएँ कभी हल नहीं हो सकतीं।

- मैं गलत रंग क्या दे रहा हूँ, जनाब? सच कहता हूँ, और इनसाफ की बात कहता हूँ। ताली हमेशा दोनों हाथों से बजा करती है।

- लेकिन तुम एक ही हाथ से ताली बजा रहे हो, यानी धरती पर हाथ पीट-पीट कर।

- क्या? मैं समझा नहीं।

- तुम अपने आप ही से लड़ रहे हो और अपने को ही चोट पहुँचा रहे हो, भोला। फूफाजी के सब विचारों से सहमत होना जरूरी नहीं है। मैं भी उनके बहुत से विचारों को जरा भी नहीं मान पाता। फिर भी वे आदर के पात्र हैं। वे हमारी पिछली पीढ़ी हैं, जिनकी प्रतिक्रियाओं पर क्रियाशील होकर हमारा विकास हो रहा है। उनकी खामियाँ तो तुम

खूब देख लेते हो, देखनी भी चाहिए; मगर यह ध्यान रहे कि खूबियों की ओर से आँख मूँदना हमारे-तुम्हारे लिए, सारी नई पीढ़ी के लिए केवल हानिप्रद है और कुछ नहीं।

भोला ने अपनी जेब से सोने का सिगरेट केस निकाला और चेहरे पर आड़ी-तिरछी रेखाएँ डालकर कहने लगा - मैं समझता था, भाई साहब कि आपने हिस्ट्री-उस्ट्री पढ़कर बड़ी समझ पाई होगी। - इतना कहकर भोला के चेहरे पर संतोष और गर्व का भाव आ गया। प्रोफेसर इंद्रदत्त के पढ़े-लिखेपन को दो कौड़ी का साबित कर भोला सातवें आसमान की बुर्जी पर चढ़ गया। - ढकोसला में ढकेलनेवाली ऐसी पिछली पीढ़ियों से हमारा देश और खासतौर से हमारी हिंदू सुसाइटी, बहुत 'सफर' कर चुकी जनाब। अब चालीस बरस पहले का जमाना भी नहीं रहा, जो 'पिताहि देवा पिताहि धर्मा' रटा-रटाकर ये लोग अपनी धाँस गाँठ लें। मैं कहता हूँ, आप पुराने हैं, बड़े निष्ठावान हैं,होंगे। अपनी निष्ठा-विष्ठा को अपने पास रखिए। नया जमाना आप लोगों की तानाशाही को बरदाश्त नहीं करेगा।

तुम अगर किसी की तानाशाही को बरदाश्त नहीं करोगे तो तुम्हारी तानाशाही...

- मैं क्या करता हूँ जनाब?

- तुम अपने झूठे सुधारों का बोझ हर एक पर लादने के लिए उतावले क्यों रहते हो?

- तुम फूफाजी को चिढ़ाते हो, भोला। मैं आज साफ-साफ ही कहूँगा। तुम और त्रिभुवन दोनों - इंद्रदत्त ने सधे स्वर में कहा।

- मैं यह सब बेवकूफी की सी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ, भाई साहब! जनाब, हमको गोश्त अच्छा लगता है और हम खाते हैं और जरूर खाएँगे। देखें, आप हमारा क्या कर लेते हैं?

- मैं आपका कुछ भी नहीं कर लूँगा, भोलाशंकरजी। आप शौक से खाइए, मेरे खयाल में फूफाजी ने भी इसका कोई विरोध नहीं किया। वह नहीं खाते, उनके संस्कार ऐसे नहीं हैं, तो तुम यह क्यों चाहते हो कि वह तुम्हारी बात, मत मानने लगें? रहा यह कि उन्होंने अपना चौका अलग कर लिया या वह तुम लोगों के कारण क्षुब्ध हैं, यह बातें तानाशाही नहीं कही जा सकतीं। उन्हें बुरा लगता है, बस।

- मैं पूछता हूँ, क्यों बुरा लगता है? मेरी भी बड़े-बड़े प्रोफेसर और नामी आलिम-फाजिलों से दिन-रात की सोहबत है। आपके वेद के जमाने के ब्राह्मण और मुनि तो गऊ तक को खा जाते थे।

भोला ने गर्दन झटकाई, उनके चेहरे का मांस थुल उठा। उनकी सिगरेट जल गई। इंद्रदत्त बोले - ठीक है, वे खाते थे। राम-कृष्ण, अर्जुन, इंद्र बगैरह भी खाते थे पीते भी थे, मगर यह कहने से तुम उस संस्कार को धो तो नहीं सकते, जो समय के अनुसार परिवर्तित हुआ और वैष्णव धर्म के साथ करीब-करीब राष्ट्रव्यापी भी हो गया।

- हाँ, तो फिर दूसरा संस्कार भी राष्ट्रव्यापी हो रहा है।

- हो रहा है, ठीक है।

- तो फिर दादा हमारा विरोध क्यों करते हैं?

- भोला, हम फूफाजी का न्याय नहीं कर सकते। इसलिए नहीं कि हम अयोग्य हैं, वरन इसलिए कि हमारे न्याय के अनुसार चलने के लिए उनके पास अब दिन नहीं रहे। आदत बदलने के लिए आख़िरी वक्त में अब उत्साह भी नहीं रहता।

- मैं पूछता हूँ, क्यों नहीं रहता?

- यह सरासर ज्यादती है तुम्हारी। वह बीता युग है, उस पर हमारा वश नहीं। हमारा वश केवल वर्तमान और भविष्य पर ही हो सकता है। विगत युग की मान्यताओं को उस युग के लिए हमें जैसे का तैसा ही स्वीकार करना होगा... पहले बात सुन लो, फिर कुछ कहना... हाँ तो मैं कह रहा था कि हमें अपने पुरखों की खूबियाँ देखनी चाहिए, ताकि हम उन्हें लेकर आगे बढ़ सकें। उनकी खामियों को या सीमाओं को समझना चाहिए, जिनसे कि हम आगे बढ़कर अपनी नई सीमा स्थापित कर सकें। उनके ऊपर अपनी सुधारवादी मनोवृत्ति को लादना घोर तानाशाही नहीं है?

- और वो जो करते हैं, वह तानाशाही नहीं है।

- अगर तानाशाही है, तो तुम उसका जरूर विरोध करो। मगर नफरत से नहीं। वे तुम्हारे अत्यंत निकट के संबंधी हैं, तुम्हारे पिता हैं। इतनी श्रद्धा तुम्हें करनी होगी, उन्हें इतनी सहानुभूति तुम्हें देनी ही होगी।

इंद्रदत्त बहुत शांत भाव से पालथी मारकर बैठे हुए बातें कर रहे थे।

भोला के चेहरे पर कभी चिढ़ और कभी लापरवाही-भरी अकड़ के साथ सिगरेट का धुआँ लहराता था। इंद्रदत्त की बात सुनकर तमककर बोला - अ-अ-आप चाहते हैं कि हम गोश्त खाना छोड़ दें?

- दोस्त, अच्छा होता कि तुम अगर यह मांस-मछली वगैरह के अपने शौक कम से कम उनके और बुआजी के जीवन-काल में घर से बाहर ही पूरे करते। यह चोरी के लिए नहीं, उनके लिहाज के लिए करते, तो परिवार में और भी शोभा बढ़ती। खैर, झगड़ा इस बात पर तो है नहीं। झगड़ा तो तुम्हारी...

- जूलियट की वजह से है। वह उनके कमरे में जाती है या अभी हाल ही में उसने सरस्वतीजी के मंदिर में बच्चे पैदा किए... तो, तो आप एक बेजुबान जानवर से भी बदला लेंगे, जनाब? यह आपकी इनसानियत है?

- मैं कहता हूँ, तुमने उसको पाला ही क्यों? कम से कम माँ-बाप का जरा-सा मान तो रखा होता।

- इमसें मान रखने की क्या बात है, भाई साहब? - भोला उठकर छोटी-सी जगह में तेजी से अकड़ते हुए टहलने लगे। चारपाई से कमरे के एक कोने तक जाकर लौटते हुए रुककर कहा - हमारा शौक है, हमने किया और कोई बुरा शौक तो है नहीं। साहब औरों के फादर-मदर्स होते हैं, तो लड़कों के शौक पर खुश होते हैं... और एक हमारी किस्मत है कि...

- तुम सिर्फ अपनी ही खुशी को देखते हो, भोला। तुमने यह नहीं देखा कि फूफाजी कितने धैर्य और संयम से तुम लोगों की इन हरकतों को सहन करते हैं।

- खाक धूल है... संयम है! हजारों तो गालियाँ दे डालीं हम लोगों को!

- और बदले में तुमने उनके ऊपर कुतिया छोड़ दी?

- ऐसी ही बहुत शुद्धता का घमंड है, तो अपनी तरफ दीवार उठवा लें। हम जो हमारे जी में आएगा करेंगे और अब तो बढ़-चढ़कर करेंगे।

- यह तो लड़ाई की बात हुई, समझौता नहीं हुआ।

- जी, हाँ, हम तो खुलेआम कहते हैं कि हमारा और दादा का समझौता नहीं हो सकता। इस मामले में मेरी और त्रिभुवन की राय एक है। मगर वे हमारे 'प्रोग्रेसिव' खयालात को नहीं देख सकते, तो उनके लिए हमारे घर में कोई जगह नहीं है।

- भोला! - बड़ी देर से गर्दन झुकाए, खामोश बैठी हुई माँ ने काँपते स्वर में और भीख का सा हाथ बढ़ाते हुए कहा - बेटा, उनके आगे ऐसी बात भूल से भी न कह देना। तुम्हारे पैरों...।"

- कहूँगा, और हजार बार कहूँगा! अब तो हमारी उनकी ठन गई। वो हमारे लड़कों-बच्चों का पहनना-ओढ़ना नहीं देख सकते, हँसता-खेलना नहीं बर्दाश्त कर सकते, हम लोगों को बर्दाश्त नहीं कर सकते, तो मैं भी उनके धर्म को ठोकर मारता हूँ। उनके ठाकुर, पोथी, पुराण सब मेरे जूते की नोक पर हैं।

माँ की आँखों से बूँदें टपक पड़ीं। उन्होंने अपना सिर झुका लिया। भोला की यह बदतमीजी इंद्रदत्त को बुरी तरह तड़पा रही थी। स्वर ठंडा रखने का प्रयत्न करते सनक भरी हँसी हँसते हुए बोले - अगर तुम्हारी यही सब बातें नए और 'प्रोग्रेसिव' विचारों का प्रतिनिधित्व वाकई करती हों, इसी से मनुष्य सुशिक्षित और फैशनेबिल माना जाता हो, मैं कहूँगा कि भोला, तुम और तुम्हारी ही तरह का सारा-नया जमाना जंगली हैं। बल्कि उनसे भी गया-गुजरा है। तुम्हारा नया जमाना न नया है, न पुराना। सभ्यता सामंतों, पैसेवालों के खोलने जोम से बढ़कर कुछ भी नहीं है। तुम्हारे विचार इनसानों के नहीं, हैवानों के हैं।

इंद्रदत्त स्वाभाविक रूप से उचित हो उठे।

- खैर, आपको अपनी इनसानियत मुबारक रहे। हम हिपोक्रेट लोगों को खूब जानते हैं और उन्हें दूर ही से नमस्कार करते हैं। भोलाशंकर तमककर खड़े हुए, तेजी से बाहर चले, दवारजे पर पहुँचरकर माँ से कहा - तुम दादा को समझा देना, अम्मा। मैं अनशन की धमकियों से जरा भी नहीं डरूँगा। जान ही तो देंगे... तो मरें न। मगर मैं उनको यहाँ नहीं मरने दूँगा। जाएँ गंगा किनारे मरें... यहाँ उनके लिए अब जगह नहीं है।

- पर यह घर अकेला तुम लोगों का ही नहीं है।

- खैर, यह तो हम कोर्ट में देख लेंगे, अगर जरूरत पड़ी तो। लेकिन मेरा अब उनसे कोई वास्ता नहीं रहा।

भोलाशंकर चले गए। बुआजी चुपचाप सिर झुकाए टप्-टप् आँसू बहाती रहीं। इंद्रदत्त उत्तेजित मुद्रा में बैठे थे। जिनके पास किसी वस्तु विशेष का अभाव रहा हो, उसके पास वह वस्तु थोड़ी-सी ही हो जाए, तो बहुत मालूम पड़ती है। इंद्रदत्त के लिए इतना क्रोध और उत्तेजना इसी तरह अधिक प्रतीत हो रही थी। पल भर चुप रहकर आवेश में आ

बुआजी के हाथ पर हाथ रखते हुए कहा - तुम और फूफाजी मेरे घर चलकर रहो, बुआ! वह भी तो तुम्हारा ही घर है।

- तुम अपने फूफाजी से भोला की बातों का जिकर न करना, बेटा।

- नहीं।

- तुम अपने फूफाजी का किसी तरह से यह बरत तुड़वा दो, बेटा तुम्हें बड़ा पुन्न होगा। तुम्हें मेरी आत्मा उठते-बैठते असीसेगी, मेरा भैया।

- मैं इसी इरादे से आया हूँ। तुम भी चलो, बुआ, तुम्हारा चेहरा कह रहा है कि तुम भी...!

- अरे, मेरी चिंता क्या है?

- हाँ, तुम्हारी चिंता नहीं। चिंता तो तुम्हें और फूफाजी को करनी है... मेरी ओर से।

- तुम दोनों के भोजन कर लेने तक मैं भी अपने प्रण से अटल रहूँगा।

बुआजी एक क्षण चिंता में पड़ गईं। फिर मीठी वाणी में समझाकर कहा - देखो, भैया इंदर, मेरे लिए जैसे भोला-तिरभुवन, वैसे तुम। जैसा ये घर, वैसा वो। आज तुम अपने फूफाजी को किसी तरह जिमा लो। उनके बरत टूटते की खबर सुनते ही, तुम्हारी कसम, मैं आप ही ठाकुरजी का भोग पा लूँगी। लेकिन इसी घर में। किसी के जी को कलेस हो बेटा, ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। क्या कहूँ, तेरे फूफाजी का क्रोध मेरी कुछ चलने नहीं देवे है। अपने जी को कलेस देवे हैं, सो देवे हैं, बाकी बच्चों के जी को जो कलेस लगै है, उसके लिए तो कहा ही क्या जाए! कलजुग कलजुग की तरै से चलेगा, भैया!

इंद्रदत्त कुछ देर तक बुआ के मन की घुटन का खुलना देखते रहे।

पंडित देवधरजी भट्ट ने नित्य-नियम के अनुसार झुटपुटे समय अपने भतीजे के आँगन में प्रवेश कर आवाज लगाई-इंद्रदत्त !

- आइए, फूफाजी!

सँकरे, टूटे, सीलन-भरी लखौटी-ईंटों पर खड़ाऊँ की खट-खट चढ़ती गई। इंद्रदत्त कटहरे के पास खड़े थे। जीने के दरवाजे से बाहर आते हुए पंडित देवधर उन्हें दिखलाई

दिए। उनके भस्म लगे कपास और देह पर पड़े जै शिव छाप के दुपट्टे में उनकी देह से एक आभा-सी फूटती हुई उन्हें महसूस हो रही थी। फूफाजी के आते ही घर बदल गया। उन्हें देखकर हर रोज ही महसूस होता है, पर आज की बात तो न्यारी ही थी।

फूफाजी के चार दिनों का व्रत आज उनके व्यक्तित्व को इंद्रदत्त की दृष्टि में और भी अधिक तेजोमय बना रहा था। फूफाजी को लेकर आज उनका मन अत्यंत भावुक हो रहा था, पीड़ा पा रहा था। इंद्रदत्त ने अनुभव किया कि फूफाजी के चेहरे पर किसी प्रकार की उत्तेजना नहीं, भूख की थकान नहीं। चेहरा सूखा, कुछ उतरा हुआ अवश्य था; परंतु मुख की चेष्टा नही बिगड़ी थी। पंडित देवधर की यह बात इंद्रदत्त को बहुत छू रही थी।

पंडित जी आकर चौकी पर बैठ गए। इंद्रदत्त उनके सामने मूढ़े पर बैठे। घर बनने के कारण उनका बैठका उजड़ गया था। अभ्यागत के आने पर इंद्रदत्त संकोच के साथ इसी टूटे कमरे में उसका स्वागत करते। फूफाजी से तो खैर संकोच नहीं। पंखे का रुख उन्होंने उनकी ओर कर दिया और फिर बैठ गए। कुछ देर तक दोनों ओर से खामोशी रही, फिर फूफाजी ने बात उठाई - तुम अभी घर गए थे, सुना।

- जी हाँ।

- तुम्हारी बुआ मुझसे कह रही थीं। मैंने यह भी सुना है कि तुम मेरे कारण किसी प्रकार का बाल हठ करने की धमकी भी दे आए हो।

पंडित देवधर ने अपना दुपट्टा उतार कर कुर्सी पर रख दिया। पालथी मारकर वे सीधे तने हुए बैठे थे। उनका प्रायः पीला पड़ा हुआ गोरा बदन उनके बैठने के सधाय के कारण ही 'स्पिरिचुअल' जँच रहा था, अन्यथा उनका यह पीलापन उनकी रोगी अवस्था का भी परिचय दे रहा था।

इंद्रदत्त ने सध-सधकर कहना शुरू किया - मेरा हठ स्वतंत्र नहीं, बड़ों के हठ में योगदान है।

- इन बातों से कुछ लाभ नहीं, इंद्र। मेरी गति के लिए मेरे अपने नियम हैं।

- और मेरे अपने नियम भी तो हो सकते हैं।

- तुम्हें स्वाधीनता है।

- तब मैंने भी यदि अनशन का फैसला किया है, तो गलत नहीं है।

- तुम अपने प्रति मेरे स्नेह पर बोझ लाद रहे हो। मैं आत्मशुद्धि के लिए व्रत कर रहा हूँ... पुरखों के साधना-गृह की जो यह दुर्गति हुई है, यह मेरे ही किसी पाप के कारण... अपने अंतःकरण की गंगा से मुझे सरस्वती का मंदिर धोना ही पड़ेगा। तुम अपना आग्रह लौटा लो, बेटा।

एक मिनट के लिए कमरे में फिर सन्नाटा छा गया, केवल पंखे की गूँज ही उस खामोशी में लहरें उठा रही थीं।

इंद्रदत्त ने शांत स्वर में कहा - एक बात पूछूँ? मंदिर में कुत्ते के प्रवेश से यदि भगवती अपवित्र हो जाती हैं, तो फिर घट-घट व्यापी ईश्वर की भावना बिलकुल झूठी है, एक ईश्वर पवित्र और दूसरा अपवित्र क्यों माना जाए?

पंडित देवधर चुप बैठे रहे। फिर गंभीर होकर कहा - हिंदू धर्म बड़ा गूढ़ है। तुम इस झगड़े में न पड़ो।

- मैं इस झगड़े में न पड़ूँगा, फूफाजी, पर एक बात सोचता हूँ... भगवान राम अगर प्रेम के वश में होकर शबरी के जूठे बेर खा सकते थे, हिंदू लोग यदि इस आख्यान में विश्वास रखते हैं, तो फिर छूत-अछूत का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। युधिष्ठिर ने अपने साथ-साथ चलनेवाले कुत्ते के बिना स्वर्ग में जाने तक से इनकार कर दिया था। यह सब कहानियाँ क्या हिंदू-धर्म की महिमा बखाननेवाली नहीं हैं? क्या यह महत् भाव नहीं है? फिर इनके विपरीत छुआछूत के भय से छुईमुई होनेवाले गूढ़ धर्म की महिमा को आप क्यों मानते हैं? इन रूढ़ियों से बँधकर मनुष्य क्या अपने को छोटा नहीं कर लेता?

पंडितजी शांतिपूर्वक सुनते रहे। इंद्रदत्त को भय हुआ कि बुरा न मान गए हों। तुरंत बोले - मैं किसी हद तक उत्तेजित जरूर हूँ, लेकिन जो कुछ पूछ रहा हूँ, जिज्ञासु के रूप में ही।

- ठीक है। - पंडितजी बोले - हमारे यहाँ आचार की बड़ी महिमा है! मनुस्मृति में आया है कि 'आचारः प्रथमो धर्मः', जैसा आचार होगा, वैसे ही विचार भी होंगे। तुम शुद्धाचरण को बुरा मानते हो?

- जी नहीं।

- तब मेरा आचार क्यों भ्रष्ट करा रहे हो।

- ऐसा धृष्टता करने का विचार स्वप्न में भी मेरे मन में नहीं आ सकता। हाँ, आपसे क्षमा माँगते हुए यह जरूर कहूँगा कि आपके आचार नए युग को विचार शक्ति नहीं दे पा रहे हैं। इसलिए उनका मूल्य मेरे लिए कुछ नहीं के बराबर है। मैं दुर्विनीत नहीं हूँ, फूफाजी, परंतु सच-सच यह अनुभव करता हूँ कि दुनिया आगे बढ़ रही है और आपका दृष्टिकोण व्यर्थ के रोड़े की तरह उसकी गति को अटकाता है, ...पर इस समय जाने दीजिए... मैं तो यही निवेदन करने घर गया था और यही मेरा आग्रह है कि आप भोजन कर लें।

पंडितजी मुस्कराए। इंद्रदत्त के मन में आशा जागी। पंडितजी बोले - करूँगा, एक शर्त पर।

- आज्ञा कीजिए।

- जो मेरे, अर्थात् पुरानी परिपाटी के यम, नियम, संयम आदि हैं, वे आज से तुम्हें भी निभाने पड़ेंगे। जिनका मूल्य तुम्हारी दृष्टि में कुछ नहीं है, वे आचार-विचार मेरे लिए प्राणों से भी अधिक मूल्यवान हैं।

इंद्रदत्त स्तंभित रह गए। वे कभी सोच भी नहीं सकते थे कि फूफाजी सहसा अनहोनी शर्त से उन्हें बाँधने का प्रयत्न करेंगे। पूछा - कब तक निभाना पड़ेगा?

- आजीवन।

इंद्रदत्त किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। जिन नियमों में उनकी आस्था नहीं, जो चीज उनके विचारों के अनुसार मनुष्य को अंधविश्वासों से जकड़ देती है और जो भारतीय संस्कृति का कलंक है, उनसे उनका प्रबुद्ध मन भला क्यों कर बँध सकता है? हाँ कहें तो कैसे कहें? उन्होंने इस व्रत, नियम, बलिदान, चमत्कार और मिथ्या विश्वासों से भरे हिंदू धर्म को समाज पर घोर अत्याचार करते देखा है। अपने-आपको तरह-तरह से प्रपीड़ित कर धार्मिक कहलानेवाला व्यक्ति इस देश को रसातल में ले गया। इस कठोर जीवन को साधनेवाले 'शुद्धाचरणी' ब्राह्मण धर्म ने इस देश की स्त्रियों और हीन कहलानेवाली जातियों को सदियों तक दासता की चक्की में बुरी तरह पीसा है और अब भी बहुत काफी हद तक पीस रहा है। हो सकता कि मनुष्य की चेतना के उगते युग में इस शुद्ध कहलानेवाले आचार ने अंधकार में उन्नत विचारों की ज्योति जगाई हो, पर अब तो सदियों से इसी झूठे धर्म ने औसत भारतवासी को दास, अंधविश्वासी, और

असीम रूप से अत्याचारों को सहन करनेवाला, झूठी दैवीशक्तियों पर यानी अपनी ही धोखा देनेवाली, लुभावनी; असंभव, कल्पनाओं पर विश्वास करनेवाला, झूठा भाग्यवादी बनाकर देश की कमर तोड़ रखी है। इसने औसत भारतवासी से आत्मविश्वास छीन लिया है। इस जड़ता के ख़िलाफ उपनिषद् जागे, मानवधर्म जागा, योग का ज्ञान जागा, बौद्ध, भागवतधर्म जागा, मध्यकाल का संत आंदोलन उठा और आज के वैज्ञानिक युग ने तो इसे एकदम निस्सार सिद्ध कर सदा के लिए इसकी कब्र ही खोद दी है।

यह जड़ धर्म कभी भारत को महान नहीं बना सका होगा। भारत की महानता उसके कर्मयोग में है, उसके व्यापक मानवीय दृष्टिकोण में है, व्यास-वाल्मीकि आदि के परम उदार भावों में है। प्राचीन भारत के दर्शन, न्याय वैशेषिक, साहित्य, शिल्प, संगीत आदि इस जड़ धर्म की उपज हरगिज नहीं हो सकते। फिर भी यह जड़ता भारत पर अर्से से भूत की तरह छाई हुई है। इसी से घृणा करने के कारण आज का नया भारतीय बिना जाँच-पड़ताल किए, अपनी सारी परंपराओं से घृणा करते हुए, सिद्धांतहीन, आस्थाहीन और निष्क्रिय हो गया है... नहीं, वे फूफाजी का धर्म हरगिज न निभा सकेंगे, हरगिज नहीं, हरगिज नहीं! पर वे भोजन कैसे करेंगे? बुआजी कैसे और कब तक भोजन करेंगी? कैसी विडंबना है? दो मनुष्यों की मौत की नैतिक जिम्मेदारी उनके ऊपर आएगी।

पंडित देवधर ने उन्हें मौन देखकर पूछा-कहो, भोजन कराओगे मुझे?

- जी...मैं धर्म-संकट में पड़ गया हूँ।

- स्पष्ट कहो, मेरा धर्म ग्रहण करोंगे?

फूफाजी, आप बहुत माँग रहे हैं। मेरा विश्वास माँग रहे हैं। मैं आपके धर्म को युग का धर्म नहीं मानता, अपना नहीं मानता।

मैं तुम्हारी स्पष्टवादिता से प्रसन्न हूँ। तुम धार्मिक हो, इसी तरह अपने से मुझको पहचानो। मैं भी अपना धर्म नहीं छोड़ सकता। यद्यपि तुम्हारे सत्संग से मैंने इतने दिनों में यह समझ लिया है कि मेरा युग, मेरा धर्म अब सदा के लिए लोप हो रहा है। फिर भी अंतिम साँस तक तो हरगिज नहीं। मेरी आस्था तपःपूत है। तुम्हारा कल्याण हो। सुखी हो, बेटा... अच्छा तो अब चलूँ -

परंतु मेरा अनशन का निश्चय अडिग है, फूफाजी। मैं आपके चरण छूकर कह रहा हूँ।

पैर छोड़ दो बेटे, इन पैरों से पहले ही जड़ता समा चुकी है... और अब तो जीव के साथ ही मिटेगी, अन्यथा नहीं। ...खैर, कल विचार करना अपने अनशन पर।

अंतिम वाक्य पंडितजी ने इस तरह कहा कि इंद्रदत्त को करारा झटका लगा। पर वे मौन रहने पर विवश थे। पंडित देवधर चलने लगे। इंद्रदत्त के मन में भयंकर तूफान उठ रहा था। वे हार गए। बुआजी को क्या उत्तर देंगे? इस अगति का अंत क्या होगा? क्या वे फूफाजी की बात मान लें? ...कैसे मान लें? यह ठीक है कि फूफाजी अपने धर्म पर किस प्रकार एकनिष्ठ हैं, यह एकनिष्ठता उन्हें बेहद प्रभावित करती है, फिर भी उनके धर्म को वह क्यों कर स्वीकार करें?

पंडित देवधरजी जीने पर पहुँचकर रुके। इंद्रदत्त उनके पीछ-पीछे चल रहे थे। पंडितजी घूमकर बोले - तुम्हारी मान्यताओं में मेरी आस्था नहीं है, इंद्र, फिर भी मैं उसके वास्तविक पक्ष को कुछ-कुछ देख अवश्य पा रहा हूँ। एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूँ। तुम भोला, त्रिभुवन के धर्म को आज का या किसी भी युग का वास्तविक धर्म मानते हो?

- जी नहीं, उनका कोई धर्म ही नहीं है।

- तुम्हारा कल्याण हो, बेटे। धन मद से जन्मे इस खोखले धर्म से सदा लड़ना, जैसे मैं लड़ा। तुम अपने मत के अनुसार लड़ो, पर लड़ो अवश्य। यह आस्थाहीन, दंभ भरा अदार्शनिक, अधार्मिक जीवन लोक के लिए अकल्याणकारी है। बोलो, वचन देते हो?

मैं आपको अपना विश्वास देता हूँ। - कहकर इंद्रजीत ने फूफाजी के चरण छू लिए। खड़ाऊँ की खट्-खट् जीने से उतर गई, आँगन पार किया, दूर चली। इंद्रदत्त आकर कटे पेड़ से अपने पलंग पर गिर गए।

नया युग पुराने युग से स्वेच्छा से विदा हो रहा था; पर विदा होते समय कितना प्रबल मोह था और कितना निर्मम व्यवहार भी।